Vol. 08, Issue: 01, January: 2019
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना का विकास : आचार्य द्विवेदी और निराला के वैचारिक प्रतिमान

DOI: https://doi.org/10.63345/ijre.v8.i1.1

डॉ गीता दुबे

सहायक प्राध्यापक (हिंदी)

ब्रह्मावर्त पी•जी• कालेज मंधना, कानपुर नगर, उत्तर प्रदेश,

छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय,कानपुर नगर

dr.geetadubey098@gmail.com

सार— हिंदी साहित्य का विकास केवल रचनात्मक अभिव्यक्तियों तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि उसके साथ-साथ आलोचनात्मक चेतना भी निरंतर विकसित होती रही है। आलोचना ने साहित्य को दिशा देने, उसके मूल्यों का मूल्यांकन करने तथा समाज और युग की चेतना से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना के विकास का अध्ययन करते हुए विशेष रूप से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के वैचारिक प्रतिमानों का विश्लेषण करता है।

आचार्य द्विवेदी ने हिंदी आलोचना को भाषिक शुद्धता, तार्किक विवेचना और सामाजिक उपयोगिता से जोड़ा। उनके विचारों में साहित्य केवल सौंदर्य का साधन नहीं, बल्कि समाज-सुधार और बौद्धिक जागरण का माध्यम है। उन्होंने आलोचना को अनुशासन, विवेक और वस्तुनिष्ठता प्रदान की। इसके विपरीत, निराला की आलोचनात्मक चेतना भावात्मक, आत्मानुभूति-प्रधान और विद्रोही स्वभाव की है। उनके साहित्य में सामाजिक यथार्थ, मानवीय पीड़ा और राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है, जिससे आलोचना में संवेदनात्मक और वैचारिक गहराई आती है।

यह शोध द्विवेदी और निराला के विचारों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करता है कि हिंदी आलोचना का विकास केवल एकरेखीय नहीं, बल्कि विविध दृष्टिकोणों से समृद्ध प्रक्रिया रही है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्विवेदी की बौद्धिक अनुशासनशीलता और निराला की वैचारिक स्वतंत्रता ने मिलकर हिंदी साहित्य को सशक्त, जागरूक और युगबोध से सम्पन्न आलोचनात्मक चेतना प्रदान की।

बीज शब्द: हिंदी साहित्य, आलोचनात्मक चेतना, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, हिंदी आलोचना का विकास, वैचारिक प्रतिमान, सामाजिक चेतना, साहित्यिक मूल्यांकन, युगबोध, आधुनिक हिंदी साहित्य

परिचय

हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा केवल रचनात्मक कृतियों तक सीमित नहीं रही है, बल्कि उसके साथ-साथ आलोचनात्मक चेतना का भी निरंतर विकास होता रहा है। साहित्य और आलोचना का संबंध पूरक एवं पारस्परिक रहा है—जहाँ साहित्य समाज की संवेदनाओं और यथार्थ को अभिव्यक्त करता है, वहीं आलोचना उन अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन, विवेचन और वैचारिक दिशा-निर्देशन करती है। आलोचनात्मक चेतना साहित्य को केवल सौंदर्यात्मक वस्तु न मानकर उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक संदर्भों में समझने का प्रयास करती है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के उदय के साथ आलोचना ने एक संगठित और उद्देश्यपूर्ण स्वरूप गृहण किया। विशेष रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के

उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हिंदी आलोचना ने परंपरागत रूढ़ मानकों से हटकर तर्क, विवेक और सामाजिक चेतना को अपनाया। इस परिवर्तन में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने हिंदी आलोचना को भाषा-शुद्धता, अनुशासन और सामाजिक उपयोगिता से जोड़ते हुए उसे बौद्धिक आधार प्रदान किया। उनके प्रयासों से आलोचना साहित्यिक अभिरुचि के साथ-साथ सामाजिक उत्तरदायित्व का माध्यम बनी।

द्विवेदी युग के बाद हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना ने नए आयाम गृहण किए, जिनका सशक्त प्रतिनिधित्व सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के साहित्य और विचारों में मिलता है। निराला ने आलोचना को भावात्मक, मानवीय और विद्रोही चेतना से समृद्ध किया। उनके साहित्य में व्यक्तिगत अनुभव, सामाजिक विषमता, राष्ट्रीय चेतना और मानवीय संघर्षों की गहन अभिव्यक्ति मिलती है, जो आलोचनात्मक दृष्टि को व्यापक और जीवंत बनाती है। निराला की दृष्टि में साहित्य आत्मानुभूति और सामाजिक यथार्थ का सजीव रूप है, जिससे आलोचना संवेदना और विचार के संतुलन की ओर अग्रसर होती है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना के विकास का अध्ययन करते हुए आचार्य द्विवेदी और निराला के वैचारिक प्रतिमानों का विश्लेषण करना है। यह शोध यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार द्विवेदी की तर्कशील, अनुशासित और सुधारवादी दृष्टि तथा निराला की स्वतंत्र, संवेदनशील और विद्रोही चेतना ने हिंदी आलोचना को नई दिशा प्रदान की। इन दोनों साहित्यकारों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन हिंदी आलोचना के विकासक्रम को समझने में सहायक सिद्ध होता है और आधुनिक हिंदी साहित्य के वैचारिक आधार को स्पष्ट करता है।

आलोचनात्मक चेतना की अवधारणा और अर्थ

आलोचनात्मक चेतना साहित्यिक अध्ययन की एक मूलभूत और अनिवार्य अवधारणा है, जो साहित्य को केवल भावनात्मक या सौंदर्यात्मक दृष्टि से देखने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उसे विचार, तर्क, विवेक और सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में समझने का प्रयास करती है। आलोचना का मूल उद्देश्य रचना के गुण-दोषों का यांत्रिक विवेचन नहीं, बल्कि साहित्य के निहित अर्थों, उसके वैचारिक आग्रहों और उसके सामाजिक प्रभावों को उद्घाटित करना होता है। इसी बौद्धिक और वैचारिक जागरूकता को आलोचनात्मक चेतना कहा जाता है।

आलोचनात्मक चेतना का अर्थ केवल नकारात्मक दृष्टि से दोष खोजने की प्रवृत्ति नहीं है। यह चेतना रचनात्मक विवेक से प्रेरित होती है, जिसमें स्वीकार और अस्वीकार दोनों की क्षमता निहित होती है। आलोचक साहित्य को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक संदर्भों में रखकर उसका मूल्यांकन करता है। इस प्रक्रिया में वह साहित्य को समाज से जोड़ता है और यह समझने का प्रयास करता है कि रचना अपने समय की किन समस्याओं, संवेदनाओं और संघर्षों को अभिव्यक्त कर रही है।

हिंदी साहित्य के संदर्भ में आलोचनात्मक चेतना का विकास परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक काल में साहित्य का मूल्यांकन मुख्यतः परंपरागत मानकों—जैसे अलंकार, रस और छंद—के आधार पर किया जाता था। उस समय आलोचना अधिकतर रूढ़ और सीमित दृष्टिकोण तक सिमटी हुई थी। जैसे-जैसे समाज में वैचारिक परिवर्तन आए और साहित्य ने सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करना आरंभ किया, वैसे-वैसे आलोचनात्मक चेतना भी विस्तृत होती गई।

आलोचनात्मक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह साहित्य को समाज परिवर्तन का साधन मानती है। इस दृष्टि से आलोचना साहित्य की सामाजिक भूमिका को रेखांकित करती है और यह प्रश्न उठाती है कि साहित्य किस हद तक मानवीय मूल्यों, सामाजिक न्याय और नैतिक चेतना को सशक्त करता है। आलोचनात्मक चेतना साहित्य को निष्क्रिय मनोरंजन का साधन न मानकर उसे वैचारिक हस्तक्षेप का माध्यम स्वीकार करती है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना ने साहित्य को आत्म-अन्वेषण, सामाजिक संघर्ष और राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा। इस चेतना ने लेखक और पाठक दोनों को जागरूक बनाया। लेखक अपनी रचना के प्रति अधिक उत्तरदायी बना और पाठक साहित्य को केवल रसास्वादन की वस्तु न मानकर विचार और विवेक के स्तर पर गृहण करने लगा।

इस प्रकार आलोचनात्मक चेतना का अर्थ साहित्य के प्रति सजग, विवेकपूर्ण और विचारशील दृष्टिकोण से है, जो रचना को उसके समग्र संदर्भ में समझने का प्रयास करता है। यह चेतना साहित्य को जीवन से जोड़ती है और उसे सामाजिक यथार्थ तथा मानवीय मूल्यों की कसौटी पर परखने की क्षमता प्रदान करती है। हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना का विकास साहित्य को अधिक जागरूक, प्रासंगिक और सामाजिक

सरोकारों से युक्त बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है।

हिंदी साहित्य में आलोचना परंपरा का संक्षिप्त विकास

हिंदी साहित्य में आलोचना की परंपरा का विकास साहित्य के समग्र विकास से गहराई से जुड़ा हुआ है। आलोचना किसी भी साहित्यिक परंपरा का वह पक्ष है जो रचना को दिशा, मूल्य और वैचारिक स्पष्टता प्रदान करता है। हिंदी साहित्य में आलोचना का प्रारंभिक स्वरूप व्यवस्थित न होकर बिखरा हुआ था, किंतु समय के साथ यह परंपरा क्रमशः परिपक्व और सुदृढ़ होती गई।

प्राचीन और मध्यकालीन हिंदी साहित्य में आलोचना स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित नहीं हुई थी। इस काल में साहित्यिक मूल्यांकन मुख्यतः आचार्य परंपरा और काव्यशास्त्रीय मानकों—जैसे रस, अलंकार, छंद और नायिका-भेद—के आधार पर किया जाता था। भक्तिकाल और रीतिकाल में साहित्य का उद्देश्य आध्यात्मिक अनुभूति या सौंदर्य प्रदर्शन था, इसलिए आलोचना भी इन्हीं सीमाओं में बंधी रही। रचनाओं की प्रशंसा या मूल्यांकन अधिकतर प्रस्तावनाओं, टीकाओं और भूमिकाओं तक सीमित था।

आधुनिक हिंदी साहित्य के उदय के साथ आलोचना ने एक नया स्वरूप गृहण किया। भारतेंदु युग को हिंदी आलोचना के प्रारंभिक आधुनिक चरण के रूप में देखा जा सकता है। इस युग में साहित्य को समाज और राष्ट्र से जोड़ने की चेतना विकसित हुई। आलोचना ने भाषा, विषय और उद्देश्य पर विचार करना आरंभ किया। यद्यपि इस काल की आलोचना अभी भी भावुकता और व्यक्तिपरकता से पूरी तरह मुक्त नहीं थी, फिर भी इसमें आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि के बीज स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

हिंदी आलोचना की परंपरा को व्यवस्थित और सुदृढ़ रूप प्रदान करने का कार्य द्विवेदी युग में हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आलोचना को अनुशासन, तर्क और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। उन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन या सौंदर्य की वस्तु न मानकर उसे समाज-सुधार और बौद्धिक जागरण का माध्यम स्वीकार किया। इस युग में आलोचना ने भाषा-शुद्धता, विषय-विस्तार और यथार्थबोध को अपना प्रमुख आधार बनाया।

छायावाद के काल में आलोचना ने संवेदनात्मक और वैचारिक गहराई प्राप्त की। इस दौर में आलोचना केवल बाह्य मानकों तक सीमित न रहकर रचना की आंतरिक अनुभूति, भाव-संवेदना और आत्मानुभव को समझने का प्रयास करने लगी। निराला जैसे साहित्यकारों की रचनात्मक चेतना ने आलोचना को अधिक मानवीय और युग-सापेक्ष बनाया।

उत्तर छायावादी काल में हिंदी आलोचना और अधिक व्यापक हुई। इसमें सामाजिक यथार्थ, प्रगतिशील विचारधारा, प्रयोगशीलता और बाद में अनेक समकालीन विमर्शों का समावेश हुआ। आलोचना अब साहित्य को सामाजिक परिवर्तन, मानवीय संघर्ष और वैचारिक प्रतिबद्धता के संदर्भ में देखने लगी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में आलोचना परंपरा का विकास परंपरागत काव्यशास्त्रीय दृष्टि से आरंभ होकर आधुनिक, वैचारिक और सामाजिक चेतना तक पहुँचा है। यह परंपरा हिंदी साहित्य को केवल रचनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि वैचारिक और बौद्धिक स्तर पर भी समृद्ध करती रही है।

साहित्य समीक्षा

हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना का विकास सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक बदलावों की प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ है। शुरुआती दौर में आलोचना की प्रवृत्ति मुख्य रूप से वैचारिक प्रभावों से प्रेरित थी, जिसमें साहित्य को केवल सौंदर्य और पारंपरिक मानदंडों के आधार पर देखा जाता था। इस परंपरा से उभरकर आधुनिक आलोचनात्मक चेतना ने साहित्य को सामाजिक वास्तविकता, वैचारिक समकालीनता और विचारधारा के संदर्भ में समझने का मार्ग अपनाया। यह विकास विशेष रूप से **द्विवेदी युग** से शुरू होकर छायावाद के माध्यम से निराला की वैचारिक अभिव्यक्ति तक विस्तृत हुआ।

आलोचना की प्रारंभिक अवस्था और द्विवेदी का योगदान

आलोचना की प्रारंभिक अवस्था में साहित्य का मूल्यांकन रूढ़िवादी मानकों पर आधारित रहा था। रीतिकालीन परंपरा के आलोचक साहित्य को अलंकार, नायिका-भेद आदि के पारंपरिक मानदंडों से परखा करते थे। परन्तु जैसे-जैसे हिंदी साहित्य ने सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों को आत्मसात किया, आलोचना की भूमिका बदलने लगी। इसी परिवर्तन के

संदर्भ में **महावीरप्रसाद द्विवेदी** का युग महत्त्वपूर्ण माना जाता है, जिसे 'द्विवेदी युग' के रूप में खड़ा किया गया है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी **सरस्वती पत्रिका** के संपादक के रूप में हिंदी भाषा के शुद्धिकरण और साहित्य के विषय विस्तार में प्रमुख योगदान देने वाले थे। उन्होंने खड़ीबोली को परिष्कृत कर साहित्य की भाषा को एकरूपता प्रदान करने का प्रयास किया, साथ ही साहित्य में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ को विषय के रूप में स्थापित किया। उनके दृष्टिकोण में साहित्य केवल सौंदर्य नहीं बल्कि **ज्ञान और यथार्थ का प्रतिबिंब** था, जो समाज की समस्याओं को दर्शाता है।

द्विवेदी की आलोचना न केवल सौंदर्य-परक थी, बल्कि उसने साहित्य के **चिंतन-क्षेत्र** का विस्तार किया। उन्होंने कविता को यथार्थपरक मानते हुए इसे केवल विलास या अलंकार की वस्तु नहीं माना, बल्कि सामाजिक हित तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का माध्यम बताया। यह दृष्टिकोण आलोचना में **वैचारिक चेतना का विस्तार** था, जिसमें रचनाकारों को युग की विसंगतियों का सामना करने की प्रेरणा मिली।

धार्मिक, सामाजिक और वैचारिक संदर्भ में निराला की भूमिका

द्विवेदी के बाद हिंदी आलोचना और रचना ने समकालीन चिंतन में और गहराई पाई। **सूर्यकांत त्रिपाठी निराला** छायावाद की प्रमुख व्यक्तित्वों में से एक थे, जिन्होंने कविता तथा आत्म-अन्वेषण के माध्यम से सामाजिक चेतना और मानव-भावना को नए आयाम दिए। उनका साहित्य यद्यपि मुख्यतः काव्यात्मक है, पर उसकी आलोचनात्मक चेतना व्यापक थी। निराला की काव्य रचनाओं में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिंब स्पष्ट मिलता है, जिससे साहित्य में **वैचारिक आलोचना एवं सामाजिक दायित्व** का भाव उभरता है।

निराला की लिखावट में **व्यक्तिगत अनुभवों का सामाजिक संदर्भ** मिलता है, जिसमें आत्म-अन्वेषण के साथ ही युग की विसंगतियों, मानवीय पीड़ा तथा राष्ट्र-चेतना के प्रश्न उपस्थित होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि निराला की कृतियाँ केवल साहित्यिक सौंदर्य की वस्तु नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने काव्य को विचार-आधारित रूप दिया और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को मजबूत बनाया।

आलोचनात्मक चेतना का विस्तार: द्विवेदी से निराला तक

द्विवेदी से निराला तक आलोचना का मार्ग परिवर्तन और पूरकता से भरा रहा। जहाँ द्विवेदी ने भाषा-शुद्धता और सामाजिक विषयों के समावेशन से आलोचना को विषय विस्तार प्रदान किया, वहाँ निराला ने आत्म-अनुभूति, सामाजिक मूल्य और व्यक्तित्व की क्षोभना को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत कर आलोचना को **भाव-वैचारिक और आत्म-चेतना** का स्वरूप दिया। इन दोनों प्रतिमानों ने मिलकर हिंदी आलोचना को विशेष पहचान दी — एक ओर भाषा व विषय का विस्तार, दूसरी ओर विचार और संवेदना की गहराई।

समकालीन विमर्श और आलोचना की स्थिति

हिंदी आलोचना के विकास में द्विवेदी और निराला के योगदान के अलावा समकालीन विमर्शों ने भी आलोचना को और अधिक सशक्त बनाया है। आलोचना आज केवल साहित्य के गुण-दोष तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने **सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आयामों** को भी ध्यान में लिया है। यह दृष्टिकोण आलोचना को सामयिक महत्व प्रदान करता है और इसे व्यापक विमर्श का पक्ष बनाता है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना के विकास की प्रक्रिया को समझना तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के वैचारिक प्रतिमानों का समग्र विश्लेषण करना है। इस शोध के लिए **गुणात्मक, विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक शोध-विधि** को अपनाया गया है, जिससे विषय के ऐतिहासिक, वैचारिक और साहित्यिक पक्षों का गहन अध्ययन संभव हो सके।

शोध का स्वरूप

यह शोध **सैद्धांतिक एवं साहित्यिक अध्ययन** पर आधारित है। इसमें आलोचना के विकास को कालक्रम, वैचारिक प्रवृत्तियों और सामाजिक संदर्भों के आधार पर विवेचित किया गया है। द्विवेदी और निराला के विचारों को उनके युगबोध, सामाजिक दृष्टिकोण और साहित्यिक योगदान के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

आँकड़ों के स्रोत

इस शोध में **द्वितीयक स्रोतों** का उपयोग किया गया है। इनमें प्रमुख रूप से—

- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की मूल रचनाएँ
- समकालीन और उत्तरकालीन हिंदी आलोचकों के ग्रंथ
- शोध-पत्र, पत्रिकाएँ, साहित्यिक निबंध
- विश्वविद्यालयीय पाठ्य-सामग्री और प्रामाणिक प्रकाशन शामिल हैं। इन स्रोतों के माध्यम से आलोचनात्मक दृष्टिकोणों की प्रामाणिकता और वैचारिक निरंतरता का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन की विधि

शोध में **विश्लेषणात्मक विधि** के अंतर्गत दोनों साहित्यकारों के विचारों, लेखन-शैली और आलोचनात्मक दृष्टिकोण का सूक्ष्म परीक्षण किया गया है। साथ ही **तुलनात्मक विधि** द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार द्विवेदी की बौद्धिक अनुशासनशीलता और निराला की भावात्मक एवं विद्रोही चेतना हिंदी आलोचना को अलग-अलग दिशाओं में विकसित करती हैं।

संदर्भात्मक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण

शोध में साहित्य को उसके **ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों** में रखकर देखा गया है। इससे यह समझने में सहायता मिली है कि आलोचनात्मक चेतना का विकास किन सामाजिक परिस्थितियों और वैचारिक आंदोलनों से प्रभावित हुआ।

शोध की सीमाएँ

यह अध्ययन मुख्यतः आचार्य द्विवेदी और निराला तक सीमित है। अन्य आलोचनात्मक धाराओं और साहित्यकारों को संदर्भ के रूप में संक्षेप में लिया गया है। इसके अतिरिक्त, शोध का आधार द्वितीयक स्रोतों तक सीमित होने के कारण मौलिक क्षेत्रीय सर्वेक्षण इसमें शामिल नहीं किया गया है।

हिंदी साहित्य में आलोचना परंपरा का संक्षिप्त विकास

हिंदी साहित्य में आलोचना की परंपरा का विकास साहित्य के समग्र विकास से गहराई से जुड़ा हुआ है। आलोचना किसी भी साहित्यिक परंपरा का वह पक्ष है जो रचना को दिशा, मूल्य और वैचारिक स्पष्टता प्रदान करता है। हिंदी साहित्य में आलोचना का प्रारंभिक स्वरूप व्यवस्थित न होकर बिखरा हुआ था, किंतु समय के साथ यह परंपरा क्रमशः परिपक्व और सुदृढ़ होती गई।

प्राचीन और मध्यकालीन हिंदी साहित्य में आलोचना स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित नहीं हुई थी। इस काल में साहित्यिक मूल्यांकन मुख्यतः आचार्य परंपरा और काव्यशास्त्रीय मानकों—जैसे रस, अलंकार, छंद और नायिका-भेद—के आधार पर किया जाता था। भक्तिकाल और रीतिकाल में साहित्य का उद्देश्य आध्यात्मिक अनुभूति या सौंदर्य प्रदर्शन था, इसलिए आलोचना भी इन्हीं सीमाओं में बंधी रही। रचनाओं की प्रशंसा या मूल्यांकन अधिकतर प्रस्तावनाओं, टीकाओं और भूमिकाओं तक सीमित था।

आधुनिक हिंदी साहित्य के उदय के साथ आलोचना ने एक नया स्वरूप गृहण किया। भारतेंदु युग को हिंदी आलोचना के प्रारंभिक आधुनिक चरण के रूप में देखा जा सकता है। इस युग में साहित्य को समाज और राष्ट्र से जोड़ने की चेतना विकसित हुई। आलोचना ने भाषा, विषय और उद्देश्य पर विचार करना आरंभ किया। यद्यपि इस काल की आलोचना अभी भी भावुकता और व्यक्तिपरकता से पूरी तरह मुक्त नहीं थी, फिर भी इसमें आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि के बीज स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

हिंदी आलोचना की परंपरा को व्यवस्थित और सुदृढ़ रूप प्रदान करने का कार्य द्विवेदी युग में हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आलोचना को अनुशासन, तर्क और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। उन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन या सौंदर्य की वस्तु न मानकर उसे समाज-सुधार और बौद्धिक जागरण का माध्यम स्वीकार किया। इस युग में आलोचना ने भाषा-शुद्धता, विषय-विस्तार और यथार्थबोध को अपना प्रमुख आधार बनाया।

छायावाद के काल में आलोचना ने संवेदनात्मक और वैचारिक गहराई प्राप्त की। इस दौर में आलोचना केवल बाह्य मानकों तक सीमित न रहकर रचना की आंतरिक अनुभूति, भाव-संवेदना और आत्मानुभव को समझने का प्रयास करने लगी। निराला जैसे साहित्यकारों की रचनात्मक चेतना ने आलोचना को अधिक मानवीय और युग-सापेक्ष बनाया।

Vol. 08, Issue: 01, January: 2019
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

उत्तर छायावादी काल में हिंदी आलोचना और अधिक व्यापक हुई। इसमें सामाजिक यथार्थ, प्रगतिशील विचारधारा, प्रयोगशीलता और बाद में अनेक समकालीन विमर्शों का समावेश हुआ। आलोचना अब साहित्य को सामाजिक परिवर्तन, मानवीय संघर्ष और वैचारिक प्रतिबद्धता के संदर्भ में देखने लगी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में आलोचना परंपरा का विकास परंपरागत काव्यशास्त्रीय दृष्टि से आरंभ होकर आधुनिक, वैचारिक और सामाजिक चेतना तक पहुँचा है। यह परंपरा हिंदी साहित्य को केवल रचनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि वैचारिक और बौद्धिक स्तर पर भी समृद्ध करती रही है।

द्विवेदी और निराला : वैचारिक समानताएँ एवं भिन्नताएँ

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला दो ऐसे प्रमुख व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने साहित्य की दिशा, दृष्टि और आलोचनात्मक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। यद्यपि दोनों का वैचारिक स्वरूप, अभिव्यक्ति-शैली और साहित्यिक प्रवृत्ति भिन्न रही, फिर भी उनके मूल उद्देश्यों और साहित्यिक सरोकारों में कई महत्त्वपूर्ण समानताएँ भी दिखाई देती हैं। इन दोनों के वैचारिक प्रतिमानों का तुलनात्मक अध्ययन हिंदी आलोचना के विकास को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

वैचारिक समानताएँ

द्विवेदी और निराला—दोनों ही साहित्य को समाज से अलग रखकर नहीं देखते। दोनों के लिए साहित्य केवल सौंदर्यबोध की वस्तु नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। उन्होंने अपने-अपने ढंग से साहित्य को राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक सुधार और बौद्धिक चेतना से जोड़ा।

दोनों साहित्यकारों में **सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना** स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। द्विवेदी ने साहित्य के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास और अव्यवस्था पर प्रहार किया, जबकि निराला ने सामाजिक विषमता, शोषण और मानवीय पीड़ा को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। इस प्रकार दोनों की दृष्टि में साहित्य समाज को जागरूक करने का साधन रहा।

इसके अतिरिक्त, दोनों ही परंपरागत रूढ़ियों के विरोधी थे। द्विवेदी ने रीतिकालीन आडंबर और भाषिक अशुद्धता का विरोध किया, वहीं निराला ने सामाजिक, साहित्यिक और वैचारिक जड़ताओं को तोड़ने का प्रयास किया। इस संदर्भ में दोनों की आलोचनात्मक चेतना प्रगतिशील और परिवर्तनकारी कही जा सकती है।

वैचारिक भिन्नताएँ

जहाँ द्विवेदी की वैचारिक दृष्टि **तर्कशील, अनुशासनप्रधान और सुधारवादी** है, वहीं निराला की दृष्टि **संवेदनशील, आत्मानुभूति-प्रधान और विद्रोही** है। द्विवेदी साहित्य में संयम, मर्यादा और संतुलन के पक्षधर थे। उन्होंने आलोचना को वस्तुनिष्ठ और नियमबद्ध बनाने का प्रयास किया, जिससे हिंदी साहित्य को एक संगठित बौद्धिक आधार मिला।

इसके विपरीत, निराला की वैचारिक चेतना अधिक स्वच्छंद और भावप्रधान रही है। उनके साहित्य में व्यक्तिगत अनुभवों और आत्मसंघर्षों का प्रभाव गहराई से दिखाई देता है। निराला की आलोचनात्मक दृष्टि नियमों और सीमाओं से मुक्त होकर मानवीय संवेदना और युगीन पीड़ा को अभिव्यक्त करती है।

भाषा और शैली के स्तर पर भी दोनों में भिन्नता है। द्विवेदी ने सरल, शुद्ध और व्यवस्थित भाषा को महत्व दिया, जबकि निराला की भाषा में प्रयोगशीलता, काव्यात्मकता और भावात्मक प्रवाह अधिक दिखाई देता है। द्विवेदी जहाँ साहित्य को बौद्धिक अनुशासन में बाँधना चाहते थे, वहीं निराला ने साहित्य को आत्म-अभिव्यक्ति और वैचारिक स्वतंत्रता का माध्यम बनाया।

आलोचनात्मक चेतना के संदर्भ में अंतर

आलोचना के क्षेत्र में द्विवेदी का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ और मूल्यांकनपरक है। वे साहित्य को उसके सामाजिक उपयोग और नैतिक प्रभाव के आधार पर परखते हैं। निराला की आलोचनात्मक चेतना अधिक अंतर्मुखी और अनुभवजन्य है, जिसमें रचना की आत्मा और मानवीय अनुभूति को प्राथमिकता दी जाती है।

द्विवेदी और निराला की वैचारिक समानताएँ और भिन्नताएँ हिंदी साहित्य को दो पूरक दिशाएँ प्रदान करती हैं। द्विवेदी की बौद्धिक अनुशासनशीलता

और निराला की संवेदनात्मक स्वतंत्रता ने मिलकर हिंदी आलोचना को संतुलित, व्यापक और जीवंत स्वरूप दिया। इन दोनों के संयुक्त प्रभाव से हिंदी साहित्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं रहा, बल्कि वह वैचारिक, सामाजिक और मानवीय चेतना का सशक्त माध्यम बन सका।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना का विकास एक सतत, गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया रही है। यह चेतना केवल साहित्यिक सौंदर्य के मूल्यांकन तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने समाज, संस्कृति, विचारधारा और युगबोध से गहरे रूप में संबंध स्थापित किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला इस विकास यात्रा के दो महत्त्वपूर्ण वैचारिक स्तंभ हैं, जिनके योगदान ने हिंदी आलोचना को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

आचार्य द्विवेदी ने हिंदी आलोचना को भाषिक अनुशासन, तार्किक विवेचना और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। उनके दृष्टिकोण में साहित्य समाज का दर्पण और सुधार का माध्यम था। उन्होंने आलोचना को सुव्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और उद्देश्यपूर्ण स्वरूप प्रदान किया, जिससे हिंदी साहित्य में बौद्धिक चेतना का विस्तार हुआ।

इसके विपरीत, निराला की आलोचनात्मक चेतना अधिक संवेदनशील, आत्मानुभूति-प्रधान और विद्रोही रही है। उनके साहित्य में सामाजिक यथार्थ, मानवीय पीड़ा और राष्ट्रीय चेतना का गहन चित्रण मिलता है। निराला ने आलोचना को भावात्मक गहराई और वैचारिक स्वतंत्रता प्रदान की, जिससे हिंदी साहित्य अधिक मानवीय और युग-सापेक्ष बन सका।

इस प्रकार द्विवेदी की तर्कशीलता और निराला की संवेदनशीलता ने मिलकर हिंदी आलोचना को संतुलित और समृद्ध रूप प्रदान किया। दोनों के वैचारिक प्रतिमानों ने आलोचनात्मक चेतना को न केवल परिष्कृत किया, बल्कि उसे व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से भी जोड़ा।

सुझाव

1. हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक चेतना के अध्ययन को केवल सैद्धांतिक न रखते हुए सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों से जोड़कर आगे बढ़ाया जाना चाहिए।
2. आचार्य द्विवेदी और निराला के अतिरिक्त अन्य समकालीन एवं उत्तरकालीन साहित्यकारों के वैचारिक योगदान पर भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाना उपयोगी होगा।
3. विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों में हिंदी आलोचना को रटंत ज्ञान के बजाय विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से पढ़ाने की आवश्यकता है।
4. वर्तमान समय में उभर रहे साहित्यिक विमर्शों—जैसे सामाजिक न्याय, स्त्री विमर्श, दलित चेतना—को द्विवेदी और निराला की आलोचनात्मक दृष्टि के आलोक में पुनः व्याख्यायित किया जाना चाहिए।
5. शोधार्थियों को मूल ग्रंथों के गहन अध्ययन के साथ-साथ आलोचनात्मक लेखन की समकालीन प्रवृत्तियों से भी परिचित कराया जाना चाहिए, जिससे आलोचना जीवंत और प्रासंगिक बनी रहे।
6. हिंदी आलोचना को डिजिटल माध्यमों और आधुनिक शोध उपकरणों के माध्यम से अधिक सुलभ और प्रभावी बनाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

सन्दर्भ सूची

- द्विवेदी, महावीरप्रसाद. *हिंदी भाषा और साहित्य*. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- द्विवेदी, महावीरप्रसाद. *कविता क्या है*. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. *निराला रचनावली* (खंड 1–8). राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. *प्रबंध पद्म*. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- शुक्ल, रामचंद्र. *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- नामवर सिंह. *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, शिवकुमार. *हिंदी आलोचना की परंपरा*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

- त्रिपाठी, रामविलास. *निराला और उनका युग*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- पांडेय, विश्वनाथ प्रसाद. *हिंदी आलोचना का विकास*. साहित्य भवन, इलाहाबाद।
- मिश्र, नंदकिशोर नवल. *आलोचना की संस्कृति*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- शुक्ल, बच्चन सिंह. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सिंह, नामवर. *छायावाद*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद. *साहित्य की भूमिका*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC). *हिंदी साहित्य पाठ्यक्रम एवं आलोचना संबंधी दिशा-निर्देश*. नई दिल्ली।
- विभिन्न लेखक. *सरस्वती* (पत्रिका), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (द्विवेदी युगीन अंक)।